

उसके भीतर अनुभव की परिपक्वता और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है। मार्टिन अविवाहित और स्वच्छंद जीवन जीने वाली स्त्री है। उसके अनुसार अपने ढंग से न जीना जीवन के प्रति अन्याय है। वह किसी सामाजिक दबाव के अधीन नहीं है और अपनी इच्छाओं को खूलकर व्यक्त करती है। इस प्रकार विदेशी स्त्रीपात्र नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित और सामाजिक प्रतिष्ठा के पारंपरिक मानदंडों से परे जीवन जीने की आकांक्षा रखती हैं। उनका जीवन बोलड और आत्मकेंद्रित है। इन विदेशी पात्रों के माध्यम से उपन्यास में एक तुलनात्मक विमर्श उपस्थित होता है। एक ओर शिवा है, जो संबंधों को निभाने में विश्वास करती है और अपने जीवन को 'संधियों की श्रृंखला' मानती है। दूसरी ओर वे स्त्रियाँ हैं, जो संबंधों को बदलने, तोड़ने और पुनर्निर्मित करने की स्वतंत्रता रखती हैं। यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि कौन-सा जीवन अधिक उचित है, बल्कि यह कि स्त्री की स्वतंत्रता की परिभाषा समाज के अनुसार कैसे बदलती है। भारतीय संदर्भ में स्वतंत्रता संबंधों के भीतर संतुलन खोजने में है जबकि पाश्चात्य संदर्भ में स्वतंत्रता आत्मनिर्णय और व्यक्तिगत संतोष में निहित है।

उपन्यास इस तथ्य को रेखांकित करता है कि स्त्री-विमर्श केवल बाहरी शोषण का प्रश्न नहीं है। शिवा का जीवन बाह्य रूप से संतुलित है किंतु आंतरिक स्तर पर वह निरंतर स्वयं को टटोलती रहती है। विदेशी स्त्रियाँ बाह्य रूप से स्वतंत्र हैं, किंतु उनके जीवन में भी स्थायित्व और संबंधों की गहराई का अभाव दिखाई देता है। इस प्रकार लेखिका ने किसी एक जीवन-पद्धति का समर्थन न करती हुई दोनों की सीमाएँ और संभावनाओं को उजागर करने में सक्षम होती हुई दिखाई देती है।

'मेरे संधिपत्र' समकालीन हिंदी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श की उस धारा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें स्त्री न तो केवल शोषित है और न ही अति-आक्रामक विद्रोही। वह संवेदनशील, विवेकशील और आत्मसम्मान से युक्त व्यक्ति है जो अपने जीवन की जटिलताओं को समझती हुई उनका सामना करती है। सूर्यबाला ने इस उपन्यास में स्त्री-मन की गहराइयों को अत्यंत मार्मिक और यथार्थपरक शैली में उद्घाटित किया है। शिवा, रिंकी, ऋचा और रत्ना जैसे पात्रों के माध्यम से उन्होंने यह सिद्ध किया है कि स्त्री का जीवन केवल व्यथा-कथा नहीं, बल्कि आत्मसंघर्ष, संतुलन और आत्मबोध की सतत प्रक्रिया है।

इस प्रकार 'मेरे संधिपत्र' स्त्री-विमर्श की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण रचना है, जो यह प्रतिपादित करती है कि परिवर्तनशील समाज में स्त्री का आंतरिक परिवर्तन भी उतना ही आवश्यक है जितना बाह्य सामाजिक परिवर्तन। यहाँ स्त्री की शक्ति उसके मौन, धैर्य और आत्मसम्मान में निहित है। यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि वह स्त्री के सूक्ष्म, जटिल और बहुआयामी व्यक्तित्व को पूर्ण गरिमा और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। इसमें स्त्री के विविध रूप—सहनशील, आत्मसंघर्षरत, स्वच्छंद, विचारप्रधान, परिपक्व और भावुक— एक साथ उपस्थित हैं। सूर्यबाला ने स्त्री को न तो एकांगी रूप में प्रस्तुत किया है और न ही किसी आदर्श के साँचे में ढाला है। उन्होंने उसे उसकी समस्त जटिलताओं, संवेदनाओं और विरोधाभासों सहित चित्रित किया है, यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह स्त्री-विमर्श को जीवन की ठोस परिस्थितियों से जोड़ता है और भारतीय तथा पाश्चात्य संदर्भों में स्त्री-अस्तित्व की भिन्न-भिन्न संभावनाओं को सामने लाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. सूर्यबाला, मेरे संधि पत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
2. गुजराल, तरसेम, सूर्यबाला साक्षात्कार के आइने में, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2017
3. खड्गे, दामोदर, सूर्यबाला का सृजन संसार, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2017
4. <https://www.drnullaadamali.com/>

ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में व्याप्त सामाजिक समस्याएँ

डॉ. कृष्ण बिहारी राय

निर्देशक

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)

शासकीय कन्या महाविद्यालय सीधी (म.प्र.)

संजीव कुमार वर्मा

शोधार्थी

एमफिल. नेट, JRF (हिन्दी)

सारांश: हिंदी दलित साहित्य भारतीय समाज की उस ऐतिहासिक वास्तविकता को अभिव्यक्त करता है जिसे सदियों तक मुख्यधारा के साहित्य और विमर्श में हाशिये पर रखा गया। इस साहित्यिक परंपरा में ओमप्रकाश वाल्मीकि का योगदान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उनका साहित्य दलित समाज के जीवनानुभवों, सामाजिक अपमान, जातिगत भेदभाव, आर्थिक शोषण तथा नारी उत्पीड़न की समस्याओं को प्रत्यक्ष और प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करता है। वाल्मीकि का लेखन सहानुभूति या दया पर आधारित नहीं है, बल्कि वह स्वयं भोगे गए यथार्थ से जन्म लेता है। उनकी आत्मकथा 'जूठन' में वर्णित अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि दलित जीवन का यथार्थ कितना अमानवीय और पीड़ादायक रहा है। वाल्मीकि स्वयं स्वीकार करते हैं कि "दलित साहित्य सहानुभूति का नहीं, बल्कि प्रतिरोध का साहित्य है" ("दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र", वाल्मीकि, 1997)। इस शोध-लेख में ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में व्याप्त जातिवाद, दलित जीवन और नारी उत्पीड़न की समस्याओं का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है तथा यह प्रतिपादित किया गया है कि उनका साहित्य सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की स्थापना की दिशा में एक सशक्त हस्तक्षेप है।

मुख्य शब्द: दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जातिवाद, दलित जीवन, नारी उत्पीड़न, दलित चेतना

प्रस्तावना: हिंदी साहित्य की परंपरा लंबे समय तक सवर्ण दृष्टिकोण से संचालित रही, जिसमें दलित समाज के यथार्थ को या तो अनदेखा किया गया या करुणा के सीमित दायरे में बाँध दिया गया। दलित साहित्य ने इस दृष्टिकोण को चुनौती देते हुए साहित्य को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा। ओमप्रकाश वाल्मीकि इसी चेतना के प्रतिनिधि लेखक हैं। वे मानते हैं कि "जब तक साहित्य सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़ा नहीं होता, तब तक उसका कोई नैतिक मूल्य नहीं" (वाल्मीकि, 1997)। उनका लेखन जाति-व्यवस्था को केवल सामाजिक कुरीति नहीं, बल्कि सत्ता की संरचना के रूप में उजागर करता है।

मुख्य विषय: ओमप्रकाश वाल्मीकि के साहित्य में जातिवाद एक केंद्रीय समस्या के रूप में उपस्थित है। उनकी आत्मकथा 'जूठन' दलित जीवन की पीड़ा का जीवंत दस्तावेज है। इसमें वर्णित अनुभव यह दर्शाते हैं कि किस प्रकार दलित व्यक्ति को बचपन से ही अपमान और बहिष्कार झेलना पड़ता है। विद्यालय जैसे आधुनिक संस्थान भी जातिगत भेदभाव से मुक्त नहीं थे। वाल्मीकि लिखते हैं—“हमारे लिए स्कूल भी एक सजा था, जहाँ हर दिन अपनी जाति का अहसास कराया जाता था” ("जूठन", वाल्मीकि, 1997)। यह कथन यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा जैसी संस्था भी दलितों के लिए मुक्ति का साधन नहीं बन सकती। जातिवाद केवल सामाजिक व्यवहार नहीं, बल्कि मानसिकता का निर्माण करता है। वाल्मीकि के साहित्य में सवर्ण समाज की वह

मानसिकता स्पष्ट दिखाई देती है, जिसमें दलित को 'नीच' और 'अस्पृश्य' माना जाता है। डॉ. आंबेडकर ने इस व्यवस्था को स्पष्ट शब्दों में रेखांकित करते हुए कहा था—“जाति केवल श्रम का विभाजन नहीं, बल्कि श्रमिकों का विभाजन है” (“जाति का विनाश”, आंबेडकर, 1936)। वाल्मीकि का साहित्य इसी विचार को अनुभवजन्य स्तर पर प्रमाणित करता है। दलित जीवन की समस्याएँ वाल्मीकि के साहित्य का दूसरा प्रमुख पक्ष हैं। उनके लेखन में दलित जीवन निरंतर संघर्ष का प्रतीक है। दलित समाज श्रम करता है, किंतु उसे न तो सम्मान मिलता है और न ही सुरक्षा। वाल्मीकि के अनुसार “दलित का श्रम समाज के लिए जरूरी है, पर उसका जीवन नहीं” (वाल्मीकि, 1997)। यह कथन दलित जीवन की त्रासदी को अत्यंत संक्षेप में अभिव्यक्त करता है।

नारी उत्पीड़न की समस्या वाल्मीकि के साहित्य में विशेष रूप से दलित स्त्री के संदर्भ में सामने आती है। दलित स्त्री दोहरे उत्पीड़न की शिकार है—जाति और लिंग के आधार पर। शरद पाटिल और शरद रेगे जैसे विद्वानों ने इसे ‘डबल मार्जिनलाइजेशन’ कहा है। शरद रेगे के अनुसार “दलित स्त्री का अनुभव न तो केवल स्त्रीवाद में समा सकता है और न ही केवल दलित विमर्श में” (Rege, 2013)। वाल्मीकि के साहित्य में दलित स्त्री संघर्षशील रूप में उपस्थित है, जो अन्याय को स्वीकार नहीं करती। ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य दलित जीवन की यथार्थपरक, अनुभवजन्य और संघर्षशील अभिव्यक्ति है। उनका रचनाकर्म भारतीय समाज की उस संरचना पर सीधा प्रहार करता है, जो जन्म आधारित जातिव्यवस्था को बनाए रखने में सहायक रही है। वाल्मीकि स्वयं इस व्यवस्था के प्रत्यक्ष भूक्तभोगी रहे हैं, इसलिए उनका साहित्य ‘देखे हुए यथार्थ’ का साहित्य है, न कि कल्पनाजन्य करुणा का। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं—“दलित साहित्य सहानुभूति का नहीं, अनुभव का साहित्य है” (वाल्मीकि, 1997)। यह कथन उनके सम्पूर्ण लेखन की वैचारिक धुरी को स्पष्ट करता है।

जातिवाद की समस्या वाल्मीकि के साहित्य में मूलभूत प्रश्न के रूप में उपस्थित है। उनकी आत्मकथा ‘जूठन’ भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता, भेदभाव और अमानवीय व्यवहार का जीवंत दस्तावेज है। विद्यालय, कार्यस्थल, गाँव, मंदिर और सार्वजनिक स्थल—हर जगह दलित को अपमान और बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। वाल्मीकि लिखते हैं—“हमारे लिए स्कूल ज्ञान का मंदिर नहीं, अपमान का अखाड़ा था” (“जूठन”, 1997)। यह कथन केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना की क्रूरता को उजागर करता है। वाल्मीकि के साहित्य में दलितों की समस्या केवल आर्थिक अभाव तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक सम्मान, मानवीय गरिमा और आत्मसम्मान से जुड़ी हुई है। वे यह प्रश्न उठाते हैं कि यदि लोकतंत्र और संविधान समानता की बात करते हैं, तो समाज में दलितों को आज भी अछूत क्यों माना जाता है। उनका लेखन इस अंतर्विरोध को उजागर करता है—“कागज पर हम नागरिक हैं, जमीन पर आज भी अछूत” (वाल्मीकि, 1997)।

दलित नारी उत्पीड़न की समस्या वाल्मीकि के साहित्य में अत्यंत संवेदनशील रूप में अभिव्यक्त हुई है। दलित स्त्री जाति और लिंग—दोनों स्तरों पर शोषण का शिकार होती है। ‘जूठन’ में वर्णित स्त्रियों का जीवन निरंतर श्रम, अपमान और हिंसा से घिरा हुआ है। वाल्मीकि दिखाते हैं कि दलित स्त्री न केवल सवर्ण पुरुषों द्वारा, बल्कि कई बार दलित पुरुषों द्वारा भी उत्पीड़ित होती है। यह द्विस्तरीय शोषण उनकी रचनाओं को विशिष्ट बनाता है। वाल्मीकि का दृष्टिकोण यहाँ किसी एकांगी नारीवाद तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह दलित नारी की विशिष्ट सामाजिक स्थिति को समझने का प्रयास करता है। शरद रेगे का कथन इस संदर्भ में प्रासंगिक है—“दलित स्त्री का अनुभव मुख्यधारा स्त्रीवाद से भिन्न है” (Rege, 2013)। वाल्मीकि के साहित्य में यह भिन्नता पूरी स्पष्टता से उभरती है।

वाल्मीकि के साहित्य में धर्म और संस्कृति की भूमिका पर भी गहन प्रश्न उठाए गए हैं। वे मानते हैं कि धर्म का प्रयोग सदियों से दलितों को सामाजिक रूप से नियंत्रित करने के लिए किया गया। धार्मिक ग्रंथों, परंपराओं और रीति-रिवाजों ने जाति व्यवस्था को नैतिक वैधता प्रदान की। इसी संदर्भ में आंबेडकर का यह कथन उल्लेखनीय है—“जाति व्यवस्था केवल श्रम का विभाजन नहीं, श्रमिकों का विभाजन है” (Ambedkar, 1936)। वाल्मीकि इस विचार को अपने साहित्य में जीवन्त रूप देते हैं।

भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी वाल्मीकि का साहित्य पारंपरिक हिंदी साहित्य से भिन्न है। उनकी भाषा सीधी, तीखी और यथार्थवादी है। वे अलंकारों और प्रतीकों के स्थान पर जीवन की कड़वी सच्चाइयों को प्राथमिकता देते हैं। उनका सौंदर्यबोध संघर्ष, प्रतिरोध और चेतना से निर्मित है। स्वयं उनके शब्दों में—“हमारा सौंदर्य संघर्ष से पैदा होता है” (वाल्मीकि, 1997)।

वाल्मीकि का साहित्य सामाजिक प्रतिरोध का साहित्य है। वह पाठक को केवल संवेदनशील नहीं बनाता, बल्कि उसे असहज करता है, प्रश्न करने को बाध्य करता है। यही कारण है कि उनका लेखन सत्ता, व्यवस्था और परंपरा के लिए चुनौती बनता है। उनका साहित्य आंबेडकरवादी चेतना से प्रेरित होकर सामाजिक परिवर्तन की दिशा में हस्तक्षेप करता है।

निष्कर्ष: इस प्रकार स्पष्ट है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य हिंदी दलित साहित्य की वैचारिक रीढ़ है। उनके लेखन में जातिवाद, दलित उत्पीड़न और नारी शोषण की समस्याएँ केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि आलोचनात्मक और परिवर्तनकामी स्वर में प्रस्तुत होती हैं। वाल्मीकि का साहित्य यह सिद्ध करता है कि साहित्य सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम हो सकता है। उनका लेखन पाठक को केवल संवेदनशील नहीं बनाता, बल्कि उसे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़ा होने की प्रेरणा देता है।

उनका साहित्य यह भी रेखांकित करता है कि जब तक जाति आधारित मानसिकता समाप्त नहीं होती, तब तक लोकतंत्र अधूरा रहेगा। वाल्मीकि का लेखन दलित समाज को आत्मसम्मान, चेतना और प्रतिरोध की भाषा प्रदान करता है। साथ ही, यह मुख्यधारा समाज को आत्मालोचना के लिए विवश करता है। अतः ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्य केवल दलित समाज की पीड़ा का दस्तावेज नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का घोषणापत्र है। हिंदी साहित्य के इतिहास में उनका योगदान स्थायी, अपरिहार्य और युगांतरकारी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश (1997). जूठन. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश (1997). दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
3. Ambedkar, B.R. (1936). Annihilation of Caste. Bombay.
4. Rege, Sharmila (2013). Writing Caste/Writing Gender. New Delhi: Zubaan.
5. Zelliott, Eleanor (2001). From Untouchable to Dalit. New Delhi: Manohar।
6. वाल्मीकि, ओमप्रकाश (1997). जूठन. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश (1997). दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
8. Ambedkar, B.R. (1936). Annihilation of Caste. Bombay.
9. Rege, Sharmila (2013). Writing Caste/Writing Gender. New Delhi: Zubaan.
10. Zelliott, Eleanor (2001). From Untouchable to Dalit. New Delhi: Manohar.